सेवा

भाग – १

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ।।

दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।। (पृ. 463½

अकाल पुरुष ने **द्वि रूप प्रकृति** अथवा माया रूप सृष्टि की रचना करके उसमें अपनी ज्योति प्रविष्ट कर दी।

सगल बनसपति महि बैसंतरू सगल दूध महि घीआ ।।

ऊच नीच महि जोति समाणी घटि घटि माधउ जीआ ।।

(पृ. 617)

इस सृष्टि के प्रवाह के लिए, इसके साथ **ही हुकुम की रचना कर दी** जो सृष्टि के कण&कण में प्रविष्ट है तथा प्रवृत्त हो रहा है।

हुकमी सभे ऊपजहि हुकमी कार कमाहि ।।

हुकमी कालै वसि है हुकमी साचि समाहि ।। (पृ. 55)

एको हुकमु वरतै सभ लोई ।।

एकसु ते सभ ओपति होई ।। (पृ. 223)

सभु सचा हुकमु वरतदा गुरमुखि सचि समाउ ।। (पृ. 949½

चहु दिसि हुकमु वरतै प्रभ तेरा चहु दिसि नाम पतालं ।। (पृ. 1275)

समस्त जीवों में **एक ही ईश्वरीय 'ज्योति' है।** इसलिए हम सब उस **अकाल पुरुष की 'जाति' अथवा 'अंश' होने के नाते मानवता के बहन&भाई हैं।**
(Universal brotherhood and sisterhood)

तूं साझा साहिबु बापु हमारा ।।

नउ निधि तेरै अखुट भंडारा ।। (पृ. 97)

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ।।

एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउनु भले को मंदे ।। (पृ. 1349)

'एक ही ज्योति' के फलस्वरूप हम सब जीवों के अन्दर एक ही ईश्वरीय 'जीवन-रौं' चल रही है। इसलिए हमारा बाहरी प्रकटाव तो चाहे अलग-अलग रूपों में होता है, परन्तु अन्तर-आत्मा में **हमारा 'आपा' एक ही है।**

एकु पिता एकस के हम बारिक तू मेरा गुर हाई ।। (पृ. 611)

माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै ।।
ना कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै ।।
सभ महि सचा एको सोई तिसका कीआ सभु कछु होई ।। (पृ. 1350)

इसलिए प्रत्येक जीव का आपस में, भीतर लिखे 'हुकुम' अनुसार 'सहज-स्वभाव' **आत्मिक आकर्षण, प्यार तथा चाव का प्रकटाव –**

माँ-प्यार
बहन-भाई के प्यार
स्त्री-पुरुष के प्यार
दोस्त-मित्रों के प्यार
रिश्तेदार-सम्बन्धियों के प्यार
गुरु भाईयों के प्यार
गुरुमुख जनों के प्यार

आदि, के माध्यम से होता रहता है। इसके उमाह में **समस्त जीव एक-दूसरे पर बलिहार तथा सदके जाते हुए 'सेवा' द्वारा स्वयं को न्यौछावर करने में खुशी तथा चाव अनुभव करते तथा आनन्द प्राप्त करते हैं।**

परन्तु यह दृश्यमान सृष्टि अहम्-मयी मायिकी मंडल का 'विराट नाटक' अथवा **'प्रपंच' है जिसमें 'अहम्' अथवा 'मैं-मेरी' के भ्रम द्वारा –**

वैर
विरोध
निंदा
चुगली
ईर्ष्या
द्वैत
डर
वहम

भ्रम
चिंता
अशान्ति
गलतफहमी
शक
तनाव
नफरत
पक्षपात
स्वार्थ
जलन
प्रतिस्पर्धा
गुटबंदी
धक्केशाही
लूट-मार
बेईमानी
धोखेबाजी
खींचतान
बदले की भावना
लड़ाई-झगड़े
अत्याचार

आदि की संसार में खिचड़ी पकी हुई है।

सतिगुरू जी ने अहम्-ग्रसित जीवों के मार्गदर्शन के लिए **ऊँची-पवित्र जीवन-दिशा** गुरबाणी द्वारा यूँ बताई है –

घालि खाइ किछु हथहु देइ ।।
नानक राहु पछाणहि सेइ ।। (पृ. 1245)

हथी कार कमावणी पैरी चलि सतिसंग मिलेही।

किरति विरति करि धरम की खटि खवालण भाइ करेही।

(वा.भा. गु. 1@3)

किरति विरति करि धरम दी हथहु दे कै भला मनावै।

(वा.भा. गु. 6@12)

गुरसिरवी दा राहु एहु गुरमुरिव चाल चलै सो देरवै।

घालि रवाइ सेवा करै गुर उपदेसु अवेसु विसेरवै।

(क .भा. गु. 28@6½

?kkfy [kkb lfØr dj oMk gkb u vki x.kk,A

(वा.भा. गु. 28@15½

^?kkfy [kkb fdN gFkg nb* के अर्थ हैं egur rFkk ifjJe }kjk **कमाकर, उसमें से बांटकर रवाने अथवा परोपकार करने को ही 'सेवा' कहा जाता है।**

'हथहु दे कै भला मनावै' अनुसार वस्तुओं तथा पदार्थों का दान करना भी उत्तम सेवा है। इस प्रकार की सेवा सबसे सरल सेवा है – जो हम सब किसी&न&किसी रूप में थोड़ी बहुत कर रहे हैं, जैसे –

माया&दान

अन्न&दान

कपड़े&दान

भूमि&दान

इलाज&दान, आदि।

भाई गुरदास जी की बाणी में 'दान' के विषय में यूँ प्रेरणा की गई है –

नामु दानु इसनानु करम कमाइआ।
निव चलनु मिठ बोल घालि रववाइआ। (वा.भा. गु. 20@6)

मिठा बोलण निव चलणु हथहु दे कै भला मनाए। (वा.भा. गु. 8@24)

यदि ऐसे **'दान' की 'सेवा'** सभ्यता के नाते की जाये तो मन में रवुशी, चाव तथा श्रद्धा&भावना उत्पन्न होती है तथा **'सेवा' करके मन प्रसन्न होता है** तथा शुक्राना करता है कि 'सेवा' करने का अवसर प्राप्त हुआ है।

परन्तु, साधारणतया जब हम **'दान'** करते हैं तब **इसके पीछे हमारा –**

कोई स्वार्थ होता है।

देरवा देरवी करते हैं

मजबूरी में करते हैं

अहम् में करते हैं
बढ़ाई के लिए करते हैं
तृष्णा की पुर्ति के लिए करते हैं
दुखों की निवृत्ति के लिए करते हैं
पापों को छुपाने के लिए करते हैं
यम की सज़ा से बचने के लिए करते हैं
स्वर्ग की लालसा के लिए करते हैं।

सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ।।
दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ।। (पृ. 466)

इसलिए ऐसा 'दान' **निष्फल जाता है** बल्कि फोकट कर्मकाण्ड बन कर रह जाता है।

इसनानु दानु जेता करहि दूजै भाइ खुआरु ।। (पृ. 34)

मन मुख चंचल मति है अंतरि बहुतु चतुराई ।।
कीता करतिआ बिरथा गइआ इकु तिल थाइ न पाई ।।
पुंन दानु जो बीजदे सभ धरम राइ कै जाई ।। (पृ. 1414)

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु ।।
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु ।। (पृ. 1428)

होम जँग बहु दान करि मुख वेद उचरणे ।
करम धरम भै भरम विचि बहु जंमण मरणे। (वा.भा. गु. 38@12)

ऐसा 'दान' जीव के लिए कल्याणकारी होने की अपेक्षा हमारे अहम् को और चारा डालता है।

उदाहरण के रूप में धर्म–स्थानों तथा परोपकारी संस्थाओं में दीवारों पर, फर्श पर तथा 'दान' की हुई वस्तुओं पर दानीजनों के नाम लिखे होते हैं, यह **'अहम्' का ही प्रकटाव है।**

दूसरी ओर यदि अरदास करने वाला भूल या लापरवाही से किसी 'दानी' का नाम बोलना भूल जाये तो **'रोष' किया जाता है कि नाम क्यों नहीं बोला।**

वर्तमान समय में –

कालाबाजारी (black marketing) द्वारा
रिश्वत द्वारा
धक्केशाही द्वारा
ठग्गी द्वारा
मार काट कर
धोखेबाजी द्वारा
स्मगलिंग द्वारा
चोरी द्वारा
लूट मार द्वारा

तथा **टालमटोल कर कामचोरी द्वारा वेतन लेकर उसमें से दानपुण्य करने को ही 'सेवा' समझे हुए हैं।**

इस प्रकार का 'दानपुण्य' करना **'सेवा' नहीं कहला सकता** तथा ऐसा किया हुआ दान व्यर्थ जाता है। अपितु 'दान' शब्द का निरादर करना है, जिसको 'पारखण्ड' भी कहा जा सकता है। साधारण लोग इसी भूल में पड़े हुए हैं।

जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ।।
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ।।
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ।।
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ।। (पृ. 472)

परन्तु अपने हाथों से मेहनत करके अथवा परिश्रम द्वारा की हुई कमाई में से दिया हुआ दान ही सफल हो सकता है।

कोई विरला गुरमुख जन ही **'भाई लालो'** की भाँति मेहनत करके सहज स्वभाव दान देता है तथा वास्तविक रूप में **'घालि खाइ किछु हथहु देइ'** की कमाई करता हुआ **सेवा करता है।**

गुरमुखि सेवा घालि विरले घालीऐ। (वा.भा. गु. 3@14)
सतु संतोखु दइआ धरमु नामु दानु इसनानु द्रिड़ाइआ ।
गुरसिखि लै गुरसिखु सदाइआ ।। (वा.भा. गु. 11@3)

मिठा बोलण निव चलणु हथहु देणा सहज सुहेला ।
गुरमुखि सुख फलु नेहु न वेला । (वा.भा. गु. 12@16)

माइआ विचि उदास करि नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ ।
बारह पंथ इकत्र करि गुरमुखि गाडी राहु चलाइआ । (वा.भा. गु. 18@14)

नामु दानु इसनानु करम कमाइआ ।
निव चलनु मिठ बोल घालि खवाइआ । (वा.भा. गु. 20@6)

गुरसिखी दा राहु एहु गुरमुखि चाल चलै सो देखै ।
घालि खाइ सेवा करै गुर उपदेसु अवेसु विसेखै ।(वा.भा. गु. 28@6)

मिठा बोलण निव चलणु हथहु दे कै भला मनाए ।
थोड़ा सवणा खावणा थोड़ा बोलनु गुरमति पाए ।
घालि खाइ सुक्रितु करै वडा होइ न आपु गणाए ।
(वा.भा. गु. 28@15)

इसके ठीक विपरीत, जो जीव केवल माया एकत्र करने में ही जुटे रहते हैं, **परोपकार तथा धर्मकार्यों हेतु 'दान' नहीं देते** – ऐसे **'कृपण'** अथवा कंजूस के विषय में गुरबाणी में यूँ ताड़ना की गई है –

साकत बंध भए है माइआ बिखु संचहि लाइ जकीड़ा ।।
हरि कै अरथि खरचि नह साकहि जमकालु सहहि सिरि पीड़ा ।।
(पृ. 698)

धाइ धाइ क्रिपन सम्रु कीनो इकत्र करी है माइआ ।।
दानु पुंनु नहीं संतन सेवा कित ही काजि न आइआ ।।
(पृ. 712)

किसी कवि ने ऐसे **'कंजूसों** के विषय में यूं कटाक्ष किया है –

दान बिन दरब निदान ठहरात कौन
गयान बिन यश अपयश कर करेगे।
'कविराय' संतन सुभाइ सुने सूमन के
धरम बिहूने धन धरा धर धरगे।

'सेवा' जीवन की सफलता के लिए आवश्यक अंग है। गुरबाणी में 'सेवा' के विषय में ताकीद भरा आदेश है –

सुखु होवै सेव कमाणीआ ।।
सभ दुनीआ आवण जाणीआ ।।
विचि दुनीआ सेव कमाईऐ ।।
ता दरगह बैसणु पाईऐ ।। (पृ. 26)

'सेवा' कई प्रकार तथा कई ढंगों से की जाती है –

अनिक भांति करि सेवा करीऐ ।।
जीउ प्रान धनु आगै धरीऐ ।। (पृ. 391)

1. **शारीरिक सेवा** – यह सेवा शरीर द्वारा की जाती है, जैसे –

बर्तन माँजना
चक्की पीसना
लंगर पकाना
पंखा करना
पानी भरना
कपड़े धोना
झाड़ू देना
सफाई करनी

तथा धार्मिक व सामाजिक भलाई के लिए मन्दिर बनाने, आदि अन्य अनेक प्रकार से सेवा करनी।

कमावा तिन की कार सरीरु पवितु होइ ।।
परवा पाणी पीसि बिगसा पैर धोइ ।। (पृ. 518)

पाणी पीहण घति सेवा घालीऐ । (वा.भा.गु. 3@8)

तपड़ झाड़ि विछाइ धूड़ी नाइआ।
कोरे मट अणाइ नीरु भराइआ। (वा.भा.गु. 20@10)

पाणी परवा पीहणा नित करै मजूरी।
तपड़ झाड़ि विछाइदा चुलि झोकि न झूरी। (वा.भा.गु. 27@19)

जो मनुष्य **शारीरिक सेवा नहीं करते –** उनके विषय में सख्त ताड़ना भी की गयी है –

मिथिआ तन नही परउपकारा ।। (पृ. 269)

सरीरु जलउ गुण बाहरा जो गुर कार न कमाइ ।। (पृ. 651)

विणु सेवा धिग हथ पैर होर निहफल करणी। (वा.भा.गु. 27@10)

2. **मानसिक सेवा** – उपरोक्त वर्णित **शारीरिक तथा मायिकी 'दान' की सेवा सरल है,** जो आम साधारण लोग भी कर सकते हैं। परन्तु **मानसिक सेवा** वह है, जिसमें अभ्यास द्वारा बनाये व्यक्तित्व अथवा अपने **'निज गुणों'** को **बाँटना होता है**, अपना आप भेंट करना होता है अथवा **अपनी सत्ता या शक्ति को न्यौछावर** करना होता है।

शारीरिक सेवा लाभदायक है, परन्तु **मानसिक सेवा उससे भी श्रेष्ठ तथा उत्तम है** क्योंकि इसमें मानसिक रूप से एक दूसरे से **अपने आपे की सांझ अथवा आदान/प्रदान होता** है जैसे –

विद्या पढ़ानी
आचरण सिखलाना
दूसरों के काम आना
उपकार करना
सहानुभूति करना
शुभ कामना करनी
गुरबाणी लिखनी
गुरबाणी पढ़नी
गुरबाणी के अर्थ सिखाने
गुरबाणी के आन्तरिक भाव बतलाने
कथा/वार्ता करनी
कीर्तन करना
कीर्तन सिखलाना
गुरमति के लेख लिखने
गुरमति के ग्रन्थ लिखने

सत्संग की ओर प्रेरित करना

गुरबाणी की ओर लगाना

मार्ग दर्शन करना, आदि।

ओइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि
उपदेसु करहि परउपकारिआ ।। (पृ. 311)

गुन गाइ सुनि लिखि देइ ।।
सो सरब फल हरि लेइ ।।
कुल समूह करत उधारु ।।
संसारु उतरसि पारि ।। (पृ. 838)

गुरबाणी लिखि पोथीआ ताल म्रिदंग रबाब वजावै । (वा. भा. गु. 6@12)

गुरबाणी सुणि सिखि लिखि लिखवाइआ । (वा. भा. गु. 20@6)

गुरसिखी दा लिखणा गुरबाणी सुणि समझै लिखै । (वा. भा. गु. 28@5)

जैसे सत मंदर कंचन के उसार दीने
तैसा पुंन सिख कउ इक शबद सिखाए का । (क. भा. गु. 673)

जब हम ऐसी **मानसिक सेवा** करते हैं – तो अपने **व्यक्तिगत गुणों की सांझ करते हैं** अथवा **अपने आप का कुछ अंश अन्य लोगों में बाँटते हैं, दूसरे शब्दों में अपना आप न्यौछावर करते हैं।**

ऐसी गहरी मानसिक सेवा बहुत लाभदायक होती है तथा लोगों को **जीवन ऊँचा उठाने के लिए 'मार्गदर्शन' करती है तथा कल्याणकारी होती है।**

ऐसी मानसिक सेवा द्वारा **मानसिक स्तर पर** –

'संग' होता है।

'संगति' होती है।

'मेल/जोल' होता है।

'वाणिज्य/व्यापार' होता है।

'आदान/प्रदान' होता है।

'मिलाप' होता है।

'दिल से दिल' मिलते हैं।

'सगल संगि हम कउ बनिआई' हो जाती है।

3. **आत्मिक सेवा** – यह त्रिगुणों से ऊपर उठकर **'आत्मिक मंडल का खेल है।** मोह/माया में ग्रसित तथा भ्रम/भुलाव में भटकती हुई किसी होनहार अभिलाषी 'रूह' को **मायिकी मंडल के घोर अंधकार में से निकाल कर आत्मिक** अनुभवी ज्ञान द्वारा **उचित आत्मिक मार्ग प्रदर्शित कर आत्म/मार्ग में लगाना ही आत्मिक मंडल** की **दैवीय सेवा है।**

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए।

जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए ।। (पृ. 749)

हर प्रकार की **'सेवा'** के पीछे कोई न कोई –

मायिकी

धार्मिक

आत्मिक

भावना (motivation) **होती है।**

इन **'भावनाओं'** अनुसार ही हम कई प्रकार की **'सेवा' करते हैं तथा फल भोगते हैं।**

एक नदरि करि केवै सभ ऊपरि

जेहा भाउ तेहा फलु पाईऐ ।। (पृ. 602)

4. **देखा/देखी की सेवा** –

हम लोगों को **देख कर** उनकी **'नकल'** करते हैं, उनके मन्तव्य या भेद का हमें कोई ज्ञान नहीं होता। इस श्रेणी में कई प्रकार के रीति/रिवाज, कर्म/काण्ड, परोपकार तथा अन्य कई भ्रम/भुलाव सम्मिलित हैं।

देखा देखी सभ करे मनमुखि बूझ न पाइ ।।

जिन गुरमुखि हिरदा सुधु है सेव पई तिन थाइ ।। (पृ. 28)

कबीर ठाकुरू पूजहि मोलि ले मनहठि तीरथ जाहि ।।

देखा देखी स्वांगु धरि भूले भटका खाहि ।। (पृ. 1371)

5. **सौदेबाजी की सेवा** – साधारणतया हमारी **'सेवा'** इस श्रेणी में ही गिनी जा सकती है। **निजी स्वार्थ की पूर्ति या सम्मान प्राप्त करने के लिए** हम लोगों

या देवी&देवताओं की सेवा करते हैं। इसी प्रकार धर्म स्थानों में –

दुखों की निवृत्ति के लिए
बिमारियों के इलाज के लिए
उचित&अनुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए
तृष्णा की पूर्ति के लिए
वाह&वाह लूटने के लिए

ही –

पाठ&पूजा करते&करवाते हैं
कर्म&क्रिया करते हैं
दान देते हैं
मन्नत मानते हैं
जप&तप करते हैं
कुरबानियाँ देते हैं
तीर्थ यात्रा करते हैं
नेक कर्म करते हैं
परोपकार करते हैं।

यह सब कुछ ईश्वर या देवी&देवताओं के साथ **'सौदेबाजी' ही है।** समस्त संसार के तथाकथित धर्म भी इस प्रकार की **धार्मिक सौदेबाजी का ही प्रचार करते हैं** तथा मायिकी लाभ उठाते हैं।

ज्यों&ज्यों हमारी जरूरतें बढ़ती जाती हैं – त्यों&त्यों इनकी पूर्ति के लिए धार्मिक सौदे बाजी भी बढ़ती जाती है। आवश्यकता (demond and supply) अनुसार **'सौदेबाजी' की 'दुकानें' या 'अड्डे' भी बढ़ते जाते हैं तथा प्रफुल्लित हो रहें हैं।** इन धार्मिक मण्डियों में बहुत गर्मा&गर्म सौदे होते हैं तथा खूब चहल&पहल लगी रहती है। यदि एक दुकान पर गर्ज पूरी न हो तो हम दूसरी किसी ओर दुकान पर चले जाते हैं तथा **बढ़&चढ़ कर सेवा करते हैं।**

इस प्रकार भोली&भाली जनता ऐसी धार्मिक सौदे&बाजी के भ्रम&भुलाव में ही गलतान होकर वास्तविक आत्मिक 'जीवन दिशा' को भूल जाती है तथा लापरवाह हो जाती है। इसी भ्रम&भुलाव में ही अपने&आप को **झूठी तसल्ली देकर 'सेवक', 'परोपकारी' तथा 'भला&भद्र' होने का झूठा दावा करते हैं।**

दूसरे शब्दों में हमने परमात्मा, गुरूओं, अवतारों, देवी/देवताओं तथा साधु/संतों को –

दुकानदार (shopkeeper)

ही समझा हुआ है तथा उनसे

सौदेबाजी (bargaining)

का ही व्यवहार करते हैं।

गुरबाणी हमें इस **'धार्मिक सौदेबाजी'** के पाखण्ड के विषय में यूँ ताड़ना करती है –

बहु ताल पूरे वाजे वजाए ।।
ना को सुणे न मंनि वसाए ।।
माइआ कारणि पिड़ बंधि नाचै
दूजै भाइ दुखु पावणिआ ।। (पृ. 122)
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ।।
दे दे मंगहि सहसा गूणा सोभ करे संसारु ।। (पृ. 466)
कोटि मधे को विरला सेवकु होरि सगले बिउहारी ।। (पृ.495)
पंडित जोतकी सभि पिड़ कूकदे किसु पहि करहि पुकारा राम ।।
माइआ मोहु अंतरि मलु लागै माइआ के वापारा राम ।।
माइआ के वापारा जाति पिआरा आवणि जाणि दुखु पाई ।।
बिखु का कीड़ा बिखु सिउ लागा बिस्टा माहि समाई ।। (पृ. 570/571)
मुरख अंधे त्रै गुण सेवहि माइआ कै बिउहारी ।। (पृ. 1246)

इतने धर्म प्रचार तथा ऐसी सख्त ताड़ना के **बावजूद** हम इस मायिकी **सौदेबाजी के भ्रम/भुलाव में से आज तक नही निकल सके।**

6. **मोह/ममता की सेवा –**

अकाल पुरुष के हुकुम अनुसार गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए, अपने माँ/बाप, बहन/भाई, पति/पत्नि तथा बच्चों की **देखभाल, परवरिश तथा सेवा/संभाल करना हमारा कर्त्तव्य है।**

इन सम्बधियों का **मेल** ईश्वरीय हुकुम में ही हमारे साथ हुआ है। इस कारण इन सम्बधियों को भी अकाल पुरुष की देन समझ कर तन/मन द्वारा इनकी **सेवा**

संभाल करनी हमारा कर्त्तव्य है।

माई बाप पुत्र सभि हरि के कीए ।।
सभना कउ सनबंधु हरि करि दीए ।। (पृ. 494)

जिनि दीए तुधु बाप महतारी ।।
जिनि दीए भ्रात पुत हारी ।।
जिनि दीए तुधु बनिता अरु मीता ।। (पृ. 913)

परन्तु जब हम इन सम्बंधियों पर **मैं-मेरी द्वारा 'अपनत्व' जतलाते है** तब यही 'प्यार' **अपनत्व की पकड़ में 'मोह' बन जाता है।** इस मोह-माया के भ्रम-भुलाव में हम पलच-पलच कर अपना अमूल्य जीवन तबाह करते हैं।

मनमुखु जाणै आपणे धीआ पूत संजोगु ।।
नारी देखि विगासीअहि नाले हरखु सु सोगु ।। (पृ. 63)

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. 133)

करम धरम सभि बंधना पाप पुंन सनबंधु ।।
ममता मोहु सु बंधना पुत्र कलत्र सु धंधु ।। (पृ. 551)

जेता मोहु परीति सुआद ।।
सभा कालरव दागा दाग ।। (पृ. 662)

जेता मोहु हउमै करि भूले मेरी मेरी करते छीनि खरे ।।
तनु धनु बिनसै सहसै सहसा
फिरि पछतावै मुखि धूरि परे ।। (पृ. 1014)

पुत्र कलत्रु मोहु हेतु है सभु दुखु सबाइआ ।।
जम दरि बधे मारी अहि भरमहि भरमाइआ ।। (पृ. 1238½

मनमुख सेवा जो करे दूजै भाइ चितु लाइ ।।

पुतु कलतु कुटंब है माइआ मोहु वधाइ ।।
दरगहि लेखा मंगीऐ कोई अंति न सकी छडाइ ।। (पृ. 1422½

7. **नौकरी चाकरी की सेवा –**

अपनी रोजी – रोटी के लिए जो नौकरी-चाकरी की सेवा की जाती है – **यह उपजीविका की गुलामी ही है।** जिसे डियूटी (duty) कहा जाता है। इस सेवा (duty) के पीछे 'भावना' का बहुत असर होता है। यदि यह डियूटी अथवा सेवा

ईश्वरीय हुकुम में **दयानतदारी** तथा **ईमानदारी से की जाये, तभी कल्याणकारी हो सकती है।** परन्तु हम यह 'सेवा' अथवा 'डियूटी' को भी समय की पाबन्धी में ईमानदारी से नहीं करते तथा बहानेबाजी द्वारा टालमटोल ही कर देते हैं, जिसका परिणाम हमें अवश्य भोगना पड़ता है।

8. **भाईचारिक सेवा –**

हम सभी सामाजिक रीतिरिवाजों तथा वहमों के बंधनो में जबरदस्त जकड़े हुए हैं तथा दुखी होने के बावजूद इन रीतिरिवाजों को कम करने की अपेक्षा **और बढ़ा रहे हैं।** हमने जन्म, मरण, मंगनी, विवाह तथा अन्य अनेक सामाजिक त्योहारों को इतना गुझँलदार, विस्तृत, दिखावे पूर्ण तथा खर्चीला बना दिया है कि जिस कारण कष्ट के अतिरिक्त, **व्यर्थ खर्च के भार से दब कर जनता दुखी हो रही है।**

इन बंधनो में हम जो **सेवा करते हैं – वह सब लोक रीति, लोकलाज तथा फोकट रीती रिवाजों की ही गुलामी है,** जिस में हम भोलेभाव या जबरदस्ती फँसे हुए हैं तथा अति दुखी हो रहे हैं।

9. **वाशनाओं के कारण सेवा –**

तुच्छ रुचियों वाली वाशनाओं की पूर्ति के लिए जो दूसरों की सेवा करते हैं – वह हमें इन **वाशनाओं में ओर भी गलतान कर देती हैं** तथा हम रसातल की ओर बहते जाते हैं।

जो दूजै भाइ साकत कामना अरथि दुरगधं सरेवदे
सो निहफल सभु अगि आनु ।। (पृ. 734)

पाप करहि पंचा के बसि रे ।।
तीरथि नाइ कहहि सभि उतरे ।।
बहुरि कमावहि होइ निसंक ।।
जम पुरि बांधि खरे कालंक ।। (पृ. 1348)

दुखों क्लेशों से बचने के लिए सेवा –

स्वयं आंमत्रित किये दुखक्लेशों से बचने के लिए हम अनेक प्रकार के –

जादू
टोनें

ताबीज

जंत्र

मंत्र

तंत्र

मरघट की पूजा तथा

क्रियाकर्म

के **भ्रम – भुलाव** में फँस कर तथाकथित साधुओं योगियों, पीर, फकीरों आदि की 'सेवा' करते हैं। वह सब **व्यर्थ तथा हानिकारक है।** इन कूड़ तथा फोकट वहमों से हमारे दुख – क्लेश कम तो क्या होने थे अपितु इन **भ्रम – भुलावों में और भी जकड़े जा रहे हैं** तथा दुखी होकर नरकमय जीवन व्यतीत कर रहें हैं।

तंत्र मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ।। (पृ. 477)

मड़ी मसाणी मूड़े जोगु नाहि ।। (पृ. 1190)

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै राति जगावन जाइ ।।

सरपनि होइ कै अउतरै जाए अपुने खाइ ।। (पृ. 1370)

तंत्र मंत्र पारखंड करि कलहि क्रोधु बहु वादि वधावै। (वा. भा. गु. 1@18)

तंत मंत पारखंड लरव बाजीगर बाजारी नगै। (वा. भा. गु. 28@2)

तंत मंत रासाइणा करामति कालरव लपटाए । (वा.भा.गु. 1@19)

(क्रमशः .....)